17 सितम्बर 2012, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-32 / 2012-14

जैन
पथप्रदर्शक
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे
जी-जागरण पर
प्रतिदिन प्रातः 6.30 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 35, अंक : 12 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये
सितम्बर(द्वितीय), 2012 (वीर नि. संवत्-2538) सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

सम्मेदशिखरजी में होनेवाले पंचकल्याणक के -

सौधर्म इंद्र-इंद्राणी अजित-अनिता जैन का सत्कार

नागपुर : यहाँ महावीर नगर स्थित श्री सैतवाल संघटन मंडल के भव्य हॉल में रविवार, दिनांक 19 अगस्त को शाश्वत तीर्थ श्री सम्मेदशिखरजी में आयोजित होनेवाले श्री पार्श्वनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के सौधर्म इंद्र व शची इंद्राणी श्री अजित जैन व सौ. अनिता जैन बड़ौदा का भव्य सत्कार समारोह श्री आदिनाथ एवं श्री सुरेंद्र नखाते परिवार द्वारा संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री सम्मेदशिखर मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

समारोह की अध्यक्षता मुंबई उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश मा. न्यायमूर्ति श्रीषेणजी डोणगांवकर ने की। प्रमुख अतिथि के रूप में श्री कुन्दकुन्द कहान तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट के उपाध्यक्ष श्री वसंतभाई दोशी, विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री महावीर विद्या निकेतन के निर्देशक डॉ. राकेशजी शास्त्री, प्राचार्य पंडित विपिनजी शास्त्री (चिरंतन ज्वैल्स), विद्या निकेतन के संयोजक श्री नरेशजी सिंघई, सौ. संपदाजी डोणगांवकर, सत्कारमूर्ति सौधर्म इन्द्र अजितजी जैन, शची इंद्राणी सौ. अनिताजी जैन तथा श्री आदिनाथ नखाते मंचासीन थे।

नखाते परिवार के सदस्यों द्वारा श्री अजितजी-अनिताजी जैन का तिलक लगाकर, माल्यार्पण, अंगवस्त्र तथा वस्त्रादि प्रदान कर भव्य सत्कार किया गया। इस अवसर पर उन्हें एक सुंदर 'सन्मान-पत्र' भी प्रदान किया गया, जिसका वाचन डॉ. राकेशजी शास्त्री ने किया। नागपुर स्थित विविध सामाजिक, धार्मिक संस्थाओं ने भी उनका सत्कार किया।

सत्कारमूर्ति श्री अजितजी जैन ने अपने उद्बोधन में नखाते परिवार व नागपुर समाज द्वारा प्राप्त इस सत्कार व स्नेह हेतु सबके प्रति आभार व्यक्त किया। अंत में श्री सुरेंद्रजी नखाते ने आभार प्रदर्शन किया। सभा का सफल संचालन पंडित श्रुतेशजी सातपुते शास्त्री ने किया।

युवा संस्कार शिविर संपन्न

बिजौलिया (राज.) : यहाँ अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन कोटा के तत्त्वावधान में दिनांक 19 व 20 अगस्त को दो दिवसीय तीर्थवन्दना एवं युवा संस्कार शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर ब्र. अमित भैया विदिशा, ब्र. सुनीलजी शास्त्री शिवपुरी, ब्र. चन्द्रेशजी शिवपुरी, पण्डित जयकुमारजी बारां, पण्डित शनिजी शास्त्री जयपुर आदि अनेक विद्वानों का लाभ प्राप्त हुआ।

इस शिविर के आमंत्रणकर्त्ता श्री जयकुमारजी चेतन कुमारजी जैन बारां वाले, शिविर उद्घाटनकर्त्ता श्री नत्थीलालजी, मनोजकुमारजी जैन जैसवाल, ध्वजारोहणकर्त्ता श्री ज्ञानचन्दजी जैन कोटा, मुख्य अतिथि श्री पंकजजी मेहता (प्रदेश महासचिव-कांग्रेस), विशिष्ट अतिथि श्री प्रेमचन्दजी बजाज, विधानकर्त्ता श्रीमती विमला जैन माताश्री प्रवीणकुमारजी जैन जैसवाल एवं मुख्य कलश विराजमानकर्त्ता श्री ओमप्रकाशजी अनूपकुमारजी जैन जैसवाल (भूतबंगला वाले) थे।

इस अवसर पर चौंसठ ऋद्धि मण्डल विधान का आयोजन किया गया। शिविर में लगभग 300-400 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

समापन के अवसर पर सायंकाल पण्डित शनिजी शास्त्री खनियांधाना के प्रवचन का लाभ मिला।

ज्ञातव्य है कि **कोटा नगर में दिनांक 10 से 18 अगस्त** तक ब्र. चन्द्रेशजी शिवपुरी के प्रवचनों का लाभ मिला, जिससे महती धर्मप्रभावना हुई।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित आशीषजी शास्त्री मौ एवं श्री महेन्द्रजी लुहाड़िया द्वारा संपन्न हुये। **- सुरेन्द्र कुमार जैन**

जयपुर शिविर का हार्दिक आमंत्रण

दिनांक 21 से 30 अक्टूबर 2012 तक पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा 15वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर में आयोजित होने जा रहा है।

इस अवसर पर आपको देश-विदेश में ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर आदि अनेकों शीर्षस्थ विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा।

आप सभी को अपने इष्ट मित्रों सहित पधारकर धर्मलाभ लेने हेतु हमारा भावभीना हार्दिक आमंत्रण है।

जो महानुभाव शिविर का लाभ लेने हेतु जयपुर पधार रहे हैं, वे अपने आगमन की पूर्व सूचना जयपुर कार्यालय को अवश्य भेजें, ताकि आवास व भोजन की समुचित व्यवस्था की जा सके।

सम्पादकीय – 84

पंचास्तिकाय : अनुशीलन

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

गाथा – १५२

विगत १५०–१५१ गाथाओं में द्रव्यमोक्ष एवं भावमोक्ष के संदर्भ में मोक्ष पदार्थ का व्याख्यान हुआ।

अब प्रस्तुत गाथा में निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन करते हैं। मूल गाथा इसप्रकार है –

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।।१५२।।

(हरिगीत)

ज्ञान दर्शन पूर्ण अर परद्रव्य विरहित ध्यान जो।
वह निर्जरा का हेतु है निजभाव परिणत जीव को।।१५२।।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव मूल गाथा में कहते हैं कि स्वभाव सहित साधु को अर्थात् स्वभाव परिणत केवली भगवान को दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण और अन्य द्रव्य से असंयुक्त ध्यान निर्जरा का हेतु होता है।

आचार्य श्री अमृतचन्द्र देव टीका में कहते हैं कि यह द्रव्यकर्म मोक्ष के हेतुभूत ऐसी परम–निर्जरा के कारणभूत ध्यान का कथन है।

वस्तुतः यह भावमुक्त (भाव मोक्षवाले) भगवान केवली के स्वरूप तृप्तपने के कारण जिनकी कर्म विपाक कृत सुख–दुःखरूप स्थिति समाप्त हो गई है, उनके कर्मकृत आवरण समाप्त होने के कारण तथा अनन्त ज्ञान–दर्शन से सम्पूर्ण शुद्ध ज्ञानचेतनापने कारण और अतीन्द्रिय सुख प्राप्त हो जाने से जो अन्य द्रव्य के संयोग से रहित हैं और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्ति रूप होने के कारण जो कथंचित् ध्यान नाम के योग्य हैं, ऐसा आत्मा स्वरूप पूर्व संचित कर्मों की शक्ति क्षीण होने के कारण अथवा का नाश हो जाने के कारण निर्जरा के हेतुरूप से वर्णन किया जाता है।

सारांश यह है कि केवली भगवान के आत्मा की दशा ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण के क्षयवाली होने के कारण, शुद्ध ज्ञानचेतनामय होने का कारण तथा इन्द्रिय व्यापारादि बर्हिद्रव्य के अवलम्बन रहित होने के कारण अन्य द्रव्य के संसर्ग रहित है और शुद्ध स्वरूप में निश्चल चैतन्य परिणति रूप होने के कारण किसी प्रकार 'ध्यान' नाम के योग्य है। उनकी ऐसी आत्मदशा का निर्जरा के निमित्त रूप से वर्णन किया जाता है; क्योंकि उन्हें पूर्वोपार्जित कर्मों की शक्ति हीन होती जाती है तथा वे कर्म खिरते जाते हैं।

(दोहा)

आन दरब संयुक्त नहिं, दृष्टि ज्ञानयुत ध्यान।
भाव सहित मुनिराज कौं, निर्जर हेतु बखान।।१७६।।

(सवैया इकतीसा)

भावमुक्त भगवान केवली स्वरूप तृप्त,
तातैं सुख–दुख–कर्म विक्रिया की समता।
खीन आवरन तातैं ग्यान–दर्सन समूह,
चेतना ममत्व आन द्रव्य नाहिं गमता।।
सुद्ध रूप विषै अविचलित चेतना तातैं,
ध्यान नाम पावै सदा आप रूप रमता।
पूर्व कर्म–सक्ति नासै निर्जरा सरूप भासै,
तातैं द्रव्यमोख पावै, रहै न लोक ममता।।१७७।।

(दोहा)

दरब मोख का हेतु है, परम निर्जरा हेतु।
ध्यान नाम तातैं कह्या, पुरुषारथ संकेत।।१७८।।

उपर्युक्त दोहे में कहा है कि भावलिंगी छठवें–सातवें गुणस्थान में झूलने वाले मुनिराज के सम्यग्दर्शन ज्ञान सहित एवं अन्यद्रव्य के ध्यान से रहित जो आत्मध्यान होता है वह निर्जरा का कारण है।

सवैया इकतीसा में कहते हैं कि भावयुक्त केवली भगवान का आवरण क्षीण हो गया है, इसकारण चेतना का ममत्व पर में नहीं रहा। शुद्धस्वरूप में ही अविचल चेतना है, इसलिए अपने में रमणता का नाम ही ध्यान कहा जाता है। इससे अघातिया कर्मों की शक्ति भी होती जाती है, द्रव्य निर्जरा के साथ द्रव्य मोक्ष को प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार उनका आत्मध्यान द्रव्य मोक्ष एवं परम निर्जरा का हेतु होता है।

अब गुरुदेव श्री कानजीस्वामी अपने व्याख्यान में कहते हैं कि आत्मा अखण्ड परिपूर्ण शुद्ध चैतन्य है। सामान्य से देखना दर्शन है तथा विशेष जानना ज्ञान है। सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान दर्शन में एक साथ परिपूर्णता है। दर्शन ज्ञान में अपूर्णता नहीं है। भगवान के अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए हैं। इसकारण उनको परद्रव्य की चिन्ता के निरोध रूप परम ध्यान होता है तथा वह ध्यान चार अघाती कर्मों की निर्जरा का कारण है। स्वरूप अनुभव की अपेक्षा से केवली भगवान को उपचार से ध्यान कहा है। पूर्व में बंधे कर्म समय–समय पर खिरते जाते हैं, इस अपेक्षा से उनके ध्यान को निर्जरा का कारण होता है – ऐसा कहते हैं।

अरहंत परमेश्वर अपने अखण्ड चैतन्य स्वरूप में प्रवर्तते हैं। भेद किये बिना निर्विकल्प रस का अनुभव करते हैं। इस कारण से कथंचित् प्रकार से वे अपने स्वरूप के ध्यानी हैं। ऐसा उपचार से कहा जाता है।

इसप्रकार जब आत्मा विकारी परिणाम से मुक्त होकर केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब केवली भगवान अपने स्वरूप के आत्मिक सुख से तृप्त रहते हैं।

इस तरह केवली भगवान अपने में समग्र रूप से एकाग्र होते हैं तथा पूर्वकर्म समयानुसार क्षय होते जाते हैं। जो अबतक अघाती कर्मों के निमित्त से अपने प्रतिजीवों गुणों में तथा अन्य अशुद्धता थी, जब भगवान उसका भी नाश करते हैं, वह उनका द्रव्य मोक्ष है।

गाथा - १५३

अब प्रस्तुत १५३ गाथा में द्रव्य मोक्ष के स्वरूप का कथन है। मूल गाथा इसप्रकार है -

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।।१५३।।

(हरिगीत)

जो सर्व संवर युक्त हैं अरु कर्म सब निर्जर करें।
वे रहित आयु वेदनीय और सर्व कर्म विमुक्त हैं॥१५३॥

आचार्य श्री कुन्दकुन्ददेव मूल गाथा में कहते हैं कि जो संवर से युक्त है, ऐसा केवलज्ञानी जीव सर्व कर्मों की निर्जरा करता हुआ वेदनीय कर्म और आयुकर्म रहित होकर केवलज्ञानी सर्व कर्म पुद्गलों को एवं भव को छोड़ता है, वह उसका द्रव्य मोक्ष है।

आचार्य श्री अमृतचन्द्र देव टीका में कहते हैं कि वास्तव में केवली भगवान को भाव मोक्ष होने पर परम संवर सिद्ध होने के कारण भावी कर्म परम्परा का निरोध होने पर, परम निर्जरा के कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पहले की कर्म संतति की स्थिति कदाचित् वेदनी नाम और गोत्र की स्थिति आयु कर्म से अधिक होने पर वह स्थिति घटकर आयुकर्म जितनी होने में केवली समुद्घात निमित्त बनता है। अपुनर्भव के लिए वह भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्र रूप कर्म पुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त वियोग होता है, वह द्रव्यमोक्ष है।

कवि हीरानन्दजी काव्य में इसी बात को इसप्रकार कहते हैं।

(दोहा)

जो संवर संजुत्त है सरव करम निर्जरेइ।
आयु वेदना विगत सो, भवतजि मुकति करेइ।।१७९।।

(सवैया इकतीसा)

केवली जिनेसुर कै भाव मोख हुए सेती,
आगामी कर्मरोध पुरा कर्म भगरा।
ध्यान की प्रसिद्ध तातैं निर्जरा सहज रूप,
पुराकर्म संतति का नास होइ सगरा।।
कोई एक जीव विषै समुद्घात होने तैं,
आयुमान रहै वेद-नाम-गोत-रगरा।
चौदह अजोगी अंत सर्व कर्म अन्त होइ,
सिद्ध थान पावै जीव मिटै लाग झगरा।।१८०।।

(दोहा)

दरब मोख की विधि कही सिवसिधिसाधन हार।
उपादेय सब कथन मैं, ग्यानी विषै त्रिकार।।१८२।।
मोख नगर कै डगर ए सम्यक् दरसन ग्यान।
नवपद तिनकै सब विषय, पूरन भया बखान।।१८३।।

कवि हीरानन्दजी के काव्यों का सारांश यह है कि जो संवर से सहित हैं, सब कर्मों की निर्जरा कर दी है, आयुकर्म, वेदनीय कर्म आदि आदि से रहित हो गये हैं वे सिद्ध जीव हैं।

केवली भगवान के मोक्ष होने पर आगामी कर्मों का निरोध तथा पुराने कर्मों का क्षय होता है, ध्यान की सिद्धि होने से सम्पूर्ण पुराने कर्मों की निर्जरा सहज होती है। किन्हीं जीवों को समुद्घात होने से शेष अघाती कर्म की निर्जरा हो जाती है और मोक्ष हो जाता है।

इसप्रकार द्रव्य मोक्ष की विधि बताई। मोक्षमार्ग में रत्नत्रय की सब प्रक्रिया पूर्ण हुई।

नोट : इस १५३ गाथा पर गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का व्याख्यान उपलब्ध नहीं है।

श्री मोक्ष पदार्थ व्याख्यान समाप्त

अथ मोक्षमार्ग प्रपञ्च चूलिका

गाथा - १५४

अब प्रस्तुत गाथा १५४ में मोक्षमार्ग के स्वरूप का कथन है। मूल गाथा इसप्रकार है -

जीवसहावं णाणं अप्पडिहददंसणं अणण्णमयं।
चरियं च तेसु णियदं अत्थित्तमणिंदियं भणियं।।१५४।।

(हरिगीत)

चेतन स्वभाव अनन्यमय निर्बाध दर्शन-ज्ञान है।
दृग ज्ञानस्थित अस्तित्व ही चारित्र जिनवर ने कहा॥१५५॥

आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव मूल गाथा में कहते हैं कि जीव का स्वभाव ज्ञान और अप्रतिहतदर्शन है, जोकि जीव से अनन्यमय है। तथा ज्ञान-दर्शन में नियत अस्तित्वमय है और जो अनिंदित है, उसे चारित्र कहा है।

आचार्य श्री अमृतचन्द्र कहते हैं कि जीव स्वभाव में नियत चारित्र मोक्षमार्ग है। जीव स्वभाव वास्तव में ज्ञान-दर्शनमय हैं; क्योंकि वे ज्ञान-दर्शन जीव से अनन्य हैं। ज्ञान-दर्शन का जीव से अनन्यपना होने के कारण यह है कि वे विशेष चैतन्यमय दर्शन जीव से निष्पन्न हैं। अर्थात् जीव द्वारा ज्ञान-दर्शन रचे गये हैं।

अब कहते हैं कि जीव के स्वरूपभूत ज्ञान-दर्शन में नियत (स्थित) जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य रूप वृत्तिमय (होने रूप) अस्तित्व जो रागादि परिणाम के अभाव के कारण अनिंदित है, वह चारित्र है, वही मोक्षमार्ग है।

कवि हीरानन्दजी काव्य में उक्त गाथा भाव स्पष्ट करते हैं -

(दोहा)

ग्यान अवरु दरसन अहत, अपृथक जीव सुभाव।
तिनमें नियत चरित्र है, अस्ति अनिन्द कहाव।।१८४।।

(सवैया इकतीसा)

सामानि-विसेष रूप चेतना स्वरूप जीव,
ग्यान-दृग दौनौं भेद अजुत विचारना।
इनही में नियत है उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य,
बृत्तिरूप अस्तिताई राग आदि टारना।।

क्रम तैं अनिंदित है चारित अमंद रूप,
मोख पंथ नीका लसै आप मैं निहारना।
याही पंथ मोखपंथी गये हैं गिरंथी कहै,
अब भी जो जाया चाहै ताकौ इहै धारना।।१८५।।

(दोहा)

जीव–सुभाव सुभाव–गत, अविचलरूप जो होइ।
रागादिक न्यारा चरन, मोखपंथ है सोइ।।१८६।।

अब इसी गाथा के भाव को स्पष्ट करते हुए गुरुदेव श्री कानजीस्वामी अपने व्याख्यान में कहते हैं कि आत्मा शुद्ध स्वभावी है, उसे जीवतत्त्व मानना, पुण्य को विकार मानना, जड़ द्रव्यों के जड़ जानना – इसप्रकार प्रत्येक पदार्थ के द्रव्य–गुण–पर्याय जैसे हैं, वैसी पहचान करके जानना – ऐसा ज्ञान का स्वभाव है।

'यह जड़ है, यह चेतन है' – ऐसा भेद किए बिना सामान्यपने देखना दर्शन है तथा भेद करके जानना ज्ञान है। दोनों का एक नाम 'चैतन्य' है। वह जीव का असाधारण लक्षण है। जानना–देखना जीव का स्वभाव है। देव–शास्त्र–गुरु के प्रति राग होना पाँच महाव्रत का राग होना आत्मा का असली स्वभाव नहीं है। जीव तो उनका भी ज्ञाता ही है। इस प्रकार निमित्त एवं पुण्य–पाप की रुचि छोड़े बिना तथा ज्ञान–दर्शन स्वभाव से आत्मा की दृष्टि हुए बिना धर्म नहीं होता।

जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा ही सर्वज्ञ ने देखा है, वही उनकी दिव्यध्वनि में आया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान–दर्शन एकरूप है। उस ज्ञान–दर्शन के स्वभाव में स्थिर रहना चारित्र है। विकार तो एक समय मात्र पर्याय में होता है, वह आत्मा त्रिकाली स्वभाव नहीं है। 'अरूपी आत्मा ज्ञाता–दृष्टा है' – ऐसी दृष्टि होना तथा ऐसा ही ज्ञान होना सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान है तथा उसी में स्थिर होना सम्यक्चारित्र है। पाँच महाव्रत के परिणाम, २८ मूलगुण पालने के परिणाम चारित्र धारण करने की वृत्ति भूमिकासार होती अवश्य है; परन्तु ये शुभभाव हैं, ये राग हैं, वीतराग भावरूप सम्यक्चारित्र नहीं है।

जैसा वस्तु का स्वभाव है, वैसा ही सर्वज्ञ ने देखा है, वही उनकी दिव्यध्वनि में आया है। आत्मा का स्वभाव ज्ञान–दर्शनमय एकरूप है। उस ज्ञान–दर्शन के स्वभाव में स्थिर रहना चारित्र है। विकार तो एक समय मात्र पर्याय में होता है, वह आत्मा त्रिकाली स्वभाव नहीं है। 'अरूपी आत्मा ज्ञाता–दृष्टा है' – ऐसी दृष्टि होना तथा ऐसा ही ज्ञान होना सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान है तथा उसी में स्थिर होना सम्यक्चारित्र है। पाँच महाव्रत के परिणाम, २८ मूलगुण पालने के परिणाम चारित्र धारण करने की वृत्ति भूमिकानुसार होती अवश्य है; परन्तु ये शुभभाव हैं, ये राग हैं, वीतराग भाव रूप सम्यक्चारित्र नहीं है।

इसप्रकार गुरुदेवश्री ने इस गाथा द्वारा यथार्थ मोक्षमार्ग स्वरूप बताया। ●

कहानी

सुख का साधन-तत्त्वज्ञान

महाराजा विजय बहादुर के राज्य में राज्य की सम्पूर्ण प्रजा लौकिक सुख चैन की बंशी बजा रही थी। प्रजा को किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं हो पाता था। राजा अपनी प्रजा का पुत्र की तरह सुख सुविधाओं का ध्यान रखता था। राज्य में न्याय और नीति का बोलबाला था; किन्तु उस राजा को एक अभाव खटक रहा था क्योंकि उसके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए भविष्य की चिन्ता उसे सता रही थी।

कुछ समय के पश्चात् राजा स्वर्गस्थ हो गया तो मंत्रियों ने विचार किया कि अब राज्य सिंहासन पर किसको पदासीन किया जाय ? बहुत विचार विनिमय के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि एक हाथी छोड़ा जाये और वह जिसके गले में माला डाल देगा, उसे ही १ वर्ष के लिए राजा बना दिया जाए तथा एक वर्ष के बाद उसे जंगली जानवरों के बीच बीहड़ जंगल में छोड़ दिया जाय, जिससे वह कोई उपद्रव न कर सके।

इस प्रकार प्रतिवर्ष जो नया राजा बनाया जाता, एक वर्ष पूरा होने पर उसे भयानक जंगल में मरने के लिए छोड़ दिया जाता। उसे जंगल में सिंह–चीता आदि जंगल जानवर खा जाते। इस प्रकार कोई राजा नहीं बनना चाहता था; किन्तु राज्य नियम के अनुसार हाथी जिसके गले में माला डाल देता, उसे राजा बनना ही पड़ता था। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव व्रतादि पालन कर स्वर्ग में चला जाता है फिर वहाँ से आकर चारों गतियों में घूमकर अनंत काल को निगोद पर्याय में चला जाता है।

इस प्रकार राजा बनकर के भी वह भविष्य की चिन्ता में दु:खी ही रहता था। एक बार एक विवेकी पुरुष का राजा बनने का क्रम आया; किन्तु वह बिलकुल दु:खी नहीं हुआ, बल्कि निरन्तर बहुत खुश रहता। उसने सोचा – एक वर्ष की अवधि में तो मैं सब कुछ कर लूँगा।

उसने उस बीहड़ जंगल को कटवाकर वहाँ सुन्दर नगर बसा दिया और उसे ही अपनी नई राजधानी बना लिया।

विवेकी पुरुष मनुष्य गति में इष्ट वियोग, अनिष्ट संयोग, रोग, बुढापा आदि में दु:ख के साधन होने पर भी तत्त्वज्ञान प्राप्त करके दु:ख के साधनों को आनंद के रूप में बदल देता है; क्योंकि दु:ख का कारण अज्ञानता है अज्ञानवश यह जीव परपदार्थों में ममता करके उनके संयोग वियोग में सुखी दु:खी होता था। तत्त्वज्ञान होने पर कोई बाह्य पदार्थ दु:ख का कारण नहीं रहता है। सब पदार्थों में अपने स्वकाल में होने वाले परिणमन का वह मात्र ज्ञाता दृष्टा बन जाता है, फिर दु:ख किस बात का ? ●

(सन्मति सन्देश–वर्ष 35 अंक 7 से साभार)

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें–
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com

कहानी

कार्य समय पर होत है - काहे होत अधीर

चंपा नरेश उदयभानु अत्यन्त शांतिप्रिय धर्मनिष्ठ-सम्यग्दृष्टि जीव थे। वे बड़ी-बड़ी घटनाओं के होने पर भी विचलित एवं व्यग्र नहीं होते थे; किन्तु उनका बड़ा राजकुमार प्रलयंकर बहुत ही उग्र, असंतुष्ट एवं उद्दंड स्वभाव का था। वह प्रजा से राज्यकर वसूल कर अपव्यय करता रहता था, फिर भी राजा उससे कुछ भी नहीं कहता। इससे उसकी उद्दंडता बढती ही जा रही थी।

मंत्रीगण राजा को समझाते थे कि राजन् ! राजकुमार को वश में करना चाहिए, अन्यथा राज्य को बहुत हानि हो सकती है। राजा ने कहा- मेरे समझाने से कुछ नहीं होता, उसके सुधरने का जब अवसर आयेगा, वह सुधर जायेगा। मंत्रीगण उसे बहुत समझाते थे किन्तु राजकुमार पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था।

एक दिन राजकुमार ने सोचा कि क्यों न अपने पिता को मारकर स्वयं राजा बन जाऊँ ? फिर मुझे कौन रोकने वाला है ? मुझे जो कुछ मन में आयेगा सो करूँगा। मैं किसी के भी अधीन नहीं रहना चाहता।

एक रात को उसने सोते हुए पिता पर तलवार से आक्रमण करना चाहा किन्तु तलवार हाथ से छूट पड़ी। तलवार की आवाज आते ही राजा उठकर बैठ गया। राजा ने सब परिस्थिति भांप ली। अत: राजा ने कहा-राजकुमार, तलवार उठाओ और अपना काम करो। यह काम शीघ्र कर लो, अन्यथा कोई आ गया तो वह तुम्हारे काम में बाधा डाल सकता है। इतना कहकर राजा ध्यान में बैठ गया। राजकुमार अपने पिता के चरणों में गिर पड़ा और बोला-पिताजी, मैं अज्ञान में अंधा होकर अनर्थ करने पर तुल गया था; किन्तु आज मेरी आँखें खुल चुकी हैं। मैं इस पाप का प्रायश्चित करूँगा।

प्रलयंकर ने तलवार उठाकर अपना ही अंत करना चाहा किन्तु राजा ने हाथ से तलवार झपट ली और समझाया-बेटा, यह मनुष्य जन्म व्यर्थ बरबाद करने को नहीं मिला है। इसमें चरम और परम शान्ति प्राप्त की जा सकती है। मात्र दृष्टि बदलना है। जो दृष्टि आज राग, द्वेष, मोह की पुष्टि में लगी है, उसे आत्मा की ओर लगाने पर ही सच्चा सुख और परम शान्ति प्राप्त की जा सकती है। उसी परम सुख और आत्मकल्याण करने के लिए मैं एकांत वनप्रांत में जा रहा हूँ।

राजकुमार ने कहा-पिताजी, प्रायश्चित तो मुझे करना है। आप अपना राज्य संभालें, दीक्षा लेने के लिए तो मैं जा रहा हूँ। इस तरह आपस में विचार-विमर्श कर अपने छोटे राजकुमार को राज्यतिलक कर राजा उदयभानु अपने बड़े पुत्र के साथ निर्ग्रंथ साधु बन गये। ●

(सन्मति सन्देश-वर्ष 38 अंक 2 से साभार)

आत्मा अमर है शरीर नश्वर है

पुण्य स्मरण

अजर-अमर शुद्धात्मा, विनाशीक तन जान।
निर्मम हो निज पद भजो, पाओ पद निर्वाण।।

स्व. श्री पूनमचन्दजी सेठी, दिल्ली

जन्मतिथि : 29.01.1929 **पुण्यतिथि : 19.08.1912**

पूज्य दादाजी स्व. केशरीमलजी सेठी एवं पूज्य दादीजी स्व. धापूदेवी सेठी से प्राप्त सत्य-सनातन, वीतराग जिनधर्म के पवित्र धार्मिक संस्कारों को अपने जीवन में हृदयंगम करने वाले आ. पिताश्री ने अपना सम्पूर्ण जीवन सादा/सात्विक, न्याय-नीति पूर्वक जीते हुए हम सभी परिवारजन, रिश्तेदारजन एवं समाज को भी प्रेरणास्रोत रहे एवं सभी को धार्मिक संस्कार प्रदान कर 84 वर्षीय शांतप्रिय धार्मिक जीवन जीते हुए अपनी आगामी मुक्ति पथ की यात्रा को प्रस्थान कर गये।

आ. पिताश्री के वियोग में हम सभी परिवारजन, रिश्तेदारगण एवं सम्पूर्ण जैन समाज अत्यंत शोक-संतृप्त हैं। आप अपनी पवित्र भावनानुसार धार्मिक/आत्मिक संस्कारों के बल से यशाशीघ्र रत्नत्रय पूर्वक पंचम गति (मोक्षलक्ष्मी) को प्राप्त करेंगे, ऐसी मंगल भावना है और हम सब भी आपके दिये गये धार्मिक एवं नैतिक संस्कारों के बल से सदैव आपको आदर्श रखते हुए निरन्तर आपके पदचिह्नों का अनुकरण करते रहें, यही मंगल भावना भाते हैं।

शोकाकुल परिवार :

धर्मपत्नी : श्रीमती मैनादेवी सेठी, **भाई :** भागचन्द-श्रीमती अंजनादेवी सेठी सोनागिर
पुत्र एवं पुत्रवधु : अनिल-श्रीमती प्रीति सेठी बैंगलोर, सुभाष-श्रीमती सुमन सेठी कोलकाता, सुशील-श्रीमती संध्या सेठी दिल्ली
पौत्र एवं पौत्रवधु : दीपक-श्रीमती विनीता सेठी बैंगलोर, ऋषभ-श्रीमती आँचल सेठी दिल्ली, हर्ष-श्रीमती शिल्पा सेठी, अभिनन्दन सेठी कोलकाता
श्रीमती ज्योति-विकास कोठारी, श्रीमती रोशनी-विनीत जैन, श्रीमती प्रतिभा-सनी पाण्ड्या, डॉ. नुपुर-अंकित जैन
प्रपौत्र : देव सेठी **प्रपौत्री :** चहल सेठी, अनिका सेठी बैंगलोर
पुत्री : श्रीमती राजुल-विनोद बज बैंगलोर, **नाती :** अनन्त-श्रीमती खुशबु बज, **नातिन :** श्रीमती प्रियंका-सुमित पाण्ड्या
बहिन : सन्तोष गंगवाल, शशिप्रभा कासलीवाल
भतीजे : महेन्द्र, अशोक-श्रीमती संगीता सेठी, राजन-श्रीमती अनिता सेठी, रंगलाल-श्रीमती पिंकी सेठी, विकास-श्रीमती प्रीति सेठी
एवं समस्त सेठी परिवार, रिश्तेदारजन तथा सम्पूर्ण एस.पी.एम.एल. परिवार ग्रुप, बैंगलोर, कोलकाता, दिल्ली

रहस्य : रहस्यपूर्ण चिट्ठी का

101 चौथा प्रवचन – डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

दिव्यध्वनि सुनकर, उसके मर्म को उद्घाटित करनेवाले शास्त्रों को पढ़कर, ज्ञानी गुरुओं के माध्यम से जानकर जो तत्त्वज्ञान होता है, आत्मज्ञान होता है; देशनालब्धि के आधार पर जो तत्त्वज्ञान-आत्मज्ञान होता है; उसमें भी तो भव्यजीवों की अटूट आस्था होती है, होनी चाहिए; अन्यथा उसके आधार पर आगे कैसे बढ़ा जायेगा ?

मैं भारिल्ल हूँ, आप कासलीवाल हैं, पाटनी हैं, गोधा हैं, गोदीका हैं; यह सब भी तो हमने अपने पूर्वजों से जाना है। उनके कथन में हमें पूरा विश्वास है और उसी के आधार पर हमारा सम्पूर्ण लौकिक व्यवहार चलता है।

जिसप्रकार लौकिक प्रकरणों में हमारे पारिवारिक पूर्वजों की बात प्रामाणिक मानी जाती है; उसीप्रकार धार्मिक प्रकरण में हमारे धर्म पूर्वज प्रामाणिक हैं; देव-शास्त्र-गुरु प्रामाणिक हैं। तात्पर्य यह है कि **देव-शास्त्र-गुरु के माध्यम से सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि ने जो आत्मा का स्वरूप समझा है, वह भी प्रामाणिक है, सही है। बस बात मात्र इतनी ही है कि सम्यग्दर्शन होने के बाद के ज्ञान-श्रद्धान में जो बात है, वह इसमें नहीं है। सत्य होने पर जैसा सम्यक्‌पना उसमें है, वैसा इसमें नहीं है।**

अरे, भाई ! राजमार्ग तो यही है; अत: इसमें से तो गुजरना ही होगा।

बहुत से लोग जिनवाणी के कथनों में शंका-आशंका व्यक्त करते हैं, उसके कथनों की उपेक्षा करते हैं; इसकारण उसके अध्ययन से होनेवाले लाभ से वंचित रहते हैं।

अरे, भाई ! इस पंचमकाल में तो मुख्यरूप से जिनवाणी ही एक मात्र शरण है। उसकी उपेक्षा, उस पर आशंका हमें कहीं का नहीं छोड़ेगी।

लोग शिकायत करते हैं कि हमारे बहुत से शास्त्रों को विरोधियों ने जला दिया, बर्बाद कर दिया।

कर दिया होगा, पर हमारा कहना यह है कि हमारी ओर से की गई जिनवाणी की उपेक्षा ने ही हमें उससे विलग किया है।

आज हमारे बड़े-बड़े विद्वान बड़े गौरव से कहते हैं कि हमारे तीन-तीन तीर्थंकर ऐतिहासिक सिद्ध हो गये हैं। शेष तीर्थंकर तो पौराणिक हैं।

इस बात को इसप्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि जैसे इतिहास से सिद्ध हो जाना तो प्रामाणिक है और पौराणिक माने पुराणों में लिखा है; उनका अस्तित्व सिद्ध करने के लिए हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

तात्पर्य यह है कि इतिहास प्रमाण है, पुराण प्रमाण नहीं है।

इतिहास जिन लोगों ने लिखा क्या वे सप्त व्यसनों से अछूते थे ? जिन शिलालेखों के आधार पर उन्होंने इतिहास रचा है; वे शिलालेख लिखने-लिखानेवाले राजा-महाराजा भी कैसे क्या थे ? हम सभी जानते हैं।

उक्त शिलालेखों के आधार पर असदाचारी लोगों द्वारा लिखा गया इतिहास उन्हें प्रमाण लगता है और जीवन भर झूठ न बोलने का सत्य महाव्रत धारण करनेवाले हित-मित-प्रियभाषी सन्तों द्वारा लिखे गये पुराण (प्रथमानुयोग) अप्रमाण हो गये, संदिग्ध हो गये।

जिनवाणी के प्रति हमारी यह अनास्था ही जिनवाणी की उपेक्षा है। कलियुग की एकमात्र शरणभूत जिनवाणी माता के प्रति व्यक्त की गई यह अनास्था हमें कहीं का भी नहीं छोड़ेगी।

जिनवाणी माता को खतरा हमारी उपेक्षा से है, हमारी अश्रद्धा से है, हमारे अविश्वास से है; किसी दूसरे से नहीं।

अन्दर-बाहर के विरोधी कितने शास्त्र जलायेंगे ? आप कह सकते हैं कि दक्षिण भारत में हमारे शास्त्रों की होलियाँ जलाई गईं, उत्तर भारत में भी कहीं-कहीं इसप्रकार के कुकृत्य हमारे ही भाइयों द्वारा हो रहे हैं। किस-किस की बात करें ?

अरे, भाई ! इन कुकृत्यों से क्या हम शास्त्रविहीन हो गये ?

नहीं, कदापि नहीं; क्योंकि आज तो जिनवाणी माता घर-घर में पहुँच गई है और निरंतर पहुँच रही है।

दूसरे के मारने से कोई नहीं मरता। शेरों की सुरक्षा की जा रही है; पर उनकी नस्ल समाप्ति की ओर है; गाय माता असुरक्षित है, सभी उसके पीछे पड़े हैं, सरकार कत्लखाने खुलवा रही है; पर उसकी नस्ल समाप्त होने का कोई खतरा नहीं है।

शेर हमारे किसी काम का नहीं है, मात्र चिड़ियाघरों की शोभा है; पर गाय हमारे जीवन का मूल आधार है। जबतक उसकी उपयोगिता है, उपयोग होता रहेगा; तबतक वह कायम रहेगी।

इसीप्रकार जबतक आत्मार्थीजन जिनवाणी का उपयोग करते रहेंगे; तबतक उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। जब उसका उपयोग बन्द हो जायेगा, स्वाध्याय करनेवाले लोग नहीं रहेंगे, उसका पठन-पाठन नहीं होगा; तब उसे कोई नहीं बचा पायेगा। उसके पठन-पाठन की परम्परा चालू रहना ही उसका वास्तविक जीवन है। जब उसे पढ़ने-पढ़ानेवाले ही न रहेंगे तो फिर वह सुरक्षित रहकर भी असुरक्षित है। यही कारण है कि स्वाध्याय को परमतप कहा गया है, साधुओं और श्रावकों के आवश्यक दैनिक कार्यों में उसे स्थान प्राप्त है।

न केवल जिनवाणी की सुरक्षा के लिए, अपितु अपने आत्मा के कल्याण की भावना से जिनवाणी का स्वाध्याय किया जाना चाहिए, उसका पठन-पाठन चालू रहना चाहिए। यदि **हम आत्मकल्याण की भावना से जिनवाणी का स्वाध्याय करेंगे, पठन-पाठन चालू रखेंगे तो वह भी सुरक्षित रहेगी।**

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि अभी अरहंत भगवान तो इस क्षेत्र में हैं नहीं, शास्त्रों में भी अनेक प्रकार की बातें मिलती हैं और गुरु भी अनेक हैं, अनेक प्रकार के हैं तथा अनेक प्रकार की बातें करते हैं। ऐसी स्थिति में समझ में ही नहीं आता कि क्या पढ़ें, किसे सुने; किसकी बात सही माने?

अरे, भाई ! यह समस्या तो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में है; फिर भी हम अपने विवेक से किसी न किसी निर्णय पर पहुँचते ही हैं।

कपड़ा खरीदना हो, सब्जी खरीदनी हो तो अनेक प्रकार के कपड़े

व सब्जियाँ उपलब्ध होने पर भी अपने योग्य सामान खरीदते ही हैं; क्योंकि नंगे-भूखे रहना तो संभव है नहीं।

इसीप्रकार आत्मकल्याण के कार्य के लिए स्वाध्याय और सत्समागम भी यथासंभव विवेक पूर्वक किया जाना चाहिए।

शास्त्रों के संबंध में एक समस्या तो है। प्रथमानुयोग के जितने शास्त्र हैं, वे सभी लगभग इस शैली में आरंभ होते हैं कि एक बार भगवान महावीर का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया। राजा श्रेणिक उनके दर्शनार्थ पधारे। उन्होंने प्रश्न किया और उसके उत्तर में भगवान महावीर ने या गौतम गणधर ने यह कहानी सुनाई। इससे लगता है कि यह सब भगवान महावीर की वाणी में आई बात है। **पर द्रव्यानुयोग, करणानुयोग और चरणानुयोग के शास्त्र इसप्रकार आरंभ नहीं होते। इसकारण हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता कि यह सभी तत्त्वज्ञान महावीर की दिव्यध्वनि में समागत वस्तुस्वरूप है।**

मध्ययुग में हिन्दी भाषा में कुछ कथा साहित्य प्रथमानुयोग की उक्त शैली में तैयार हुआ; जिसकी कथावस्तु लगभग ऐसी है कि जिसमें कहा जाता है कि एक लड़की ने मुनिराज की उपेक्षा की; इसप्रकार वह नरक में गई।

फिर दो-चार बार ऐसा होता है कि वह नरक से निकल कर कुरूप, रोगी और नीच कुल में पैदा हुई, फिर मरकर नरक में गई। फिर वह किसी भव में प्रायश्चित्त करती है, मुनिराजों का सम्मान करती है, फलस्वरूप स्वर्ग में जाती है, फिर राजा के यहाँ सुन्दर कन्या होती है। दो-चार बार ऐसा होता है और फिर पुरुष पर्याय पाकर वह मोक्ष चली जाती है।

यह सबकुछ महिलाओं के साथ ही हुआ, पुरुषों के साथ नहीं; क्योंकि धर्मभीरु महिलायें ऐसी बातों पर जल्दी विश्वास करती हैं, डरती भी बहुत हैं और आहारादि की व्यवस्था भी मुख्यरूप से वे ही करती हैं।

शिथिलाचार के विरुद्ध उठ रही आवाजों को दबाने की भावना से यह सब लिखा गया लगता है। यह सब साहित्य भगवान महावीर की वाणी बन बैठा और **समयसारादि शास्त्र उपेक्षित हो गये; क्योंकि उनके आरंभ में ऐसा कुछ नहीं लिखा गया था।**

जो भी हुआ हो, पर यदि हमें आत्मकल्याण करना है तो उपलब्ध जैन साहित्य में से वीतरागता के पोषक तत्त्वनिरूपक शास्त्रों को चुनकर उनका स्वाध्याय करके आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करना होगा।

हम इस बात को गहराई से समझे कि जैनदर्शन वीतरागी दर्शन है, वह वीतरागता को ही धर्म घोषित करता है। राग-द्वेष और अज्ञान तो स्पष्टरूप से अधर्म हैं। यह हम सभी लोग जानते हैं; क्योंकि हमारी परम्परा में यह सब चला आ रहा है।

हम पत्र लिखते हैं, शादी का कार्ड छपाते हैं तो सबसे ऊपर **श्री वीतरागाय नमः** लिखते हैं, घर के दरवाजे पर **श्री वीतरागाय नमः** लिखते हैं, रोकड़-बही खाता-बही में भी सबसे ऊपर **श्री वीतरागाय नमः** लिखते हैं। अतः वीतरागता ही धर्म है, राग-द्वेष-मोह धर्म नहीं - यह तो हम सब भलीभाँति जानते ही हैं।

अतः देव-शास्त्र-गुरु के संदर्भ में भी इसी आधार पर सही-गलत का निर्णय करना चाहिए। इसीलिए तो मैंने लिखा है -

वीतरागता की पोषक ही जिनवाणी कहलाती है।
यह है मुक्ति का मार्ग निरन्तर हमको जो दिखलाती है॥
उसी वाणी के अंतर्तम को जिन गुरुओं ने पहिचाना है।
उन गुरुवर्यो के चरणों में मस्तक बस हमें झुकाना है॥[1]

जो वीतरागता का पोषण करें, वे शास्त्र ही सच्चे शास्त्र हैं। **शास्त्र के समान ही गुरु भी वही सही है, जो वीतरागता में धर्म बतायें।** राग-द्वेष में धर्म बतानेवाले गुरु सच्चे नहीं हो सकते।

हमें शास्त्रों को पढ़कर, गुरुओं के माध्यम से क्या समझना चाहिए - इस संदर्भ में मार्गदर्शन करते हुए पण्डित टोडरमलजी एक पाठ्यक्रम प्रस्तुत करते हैं, जो इसप्रकार है -

''वहाँ अपने प्रयोजनभूत मोक्षमार्ग के, देव-गुरु-धर्मादिक के, जीवादितत्त्वों के तथा निज-पर के और अपने को अहितकारी-हितकारी भावों के - इत्यादि के उपदेश से सावधान होकर ऐसा विचार किया कि अहो ! मुझे तो इन बातों की खबर ही नहीं, मैं भ्रम से भूलकर प्राप्त पर्याय में ही तन्मय हुआ; परन्तु इस पर्याय की तो थोड़े ही काल की स्थिति है; तथा यहाँ मुझे सर्व निमित्त मिले हैं, इसलिए मुझे इन बातों को बराबर समझना चाहिए, क्योंकि इनमें तो मेरा ही प्रयोजन भासित होता है। ऐसा विचारकर जो उपदेश सुना उसके निर्धार करने का उद्यम किया।[2]''

मोक्षमार्ग, देव-गुरु-धर्म, जीवादि प्रयोजनभूततत्त्व, स्व और पर का भेद जाननेरूप भेदविज्ञान और अपने हितकारी भाव और अहितकारी भाव; आत्मकल्याण के लिए बस इतना जानना ही पर्याप्त है।

अतः जिन शास्त्रों में उक्त विषय समझाये गये हों, वे शास्त्र ही मुख्यरूप से स्वाध्याय करने योग्य हैं तथा गुरुओं से भी उक्त बातों को समझने का आग्रह रखना चाहिए, विनयपूर्वक निवेदन करना चाहिए।

पर इस बात का ध्यान रहे कि जिनवाणी के प्रति अश्रद्धा के साथ किया गया स्वाध्याय आत्मकल्याण के लिए रंचमात्र भी कार्यकारी नहीं होता। पण्डितजी तो कहते हैं कि जिनागम में वर्णित वस्तुस्वरूप को सुनकर या पढ़कर हमें इसप्रकार के अहो भाव जागृत होना चाहिए कि हमें तो इन बातों का पता ही नहीं था, हम तो प्राप्त पर्याय में ही तन्मय थे, पर इस पर्याय की स्थिति तो बहुत थोड़े काल की है। आज हमें इस बात को समझने की पूरी अनुकूलता है, अतः हमें इन बातों को गहराई से समझने का प्रयास करना चाहिए; क्योंकि इनके समझने में ही हमारा भला है।

यदि इसप्रकार के भाव जागृत होते हैं तो समझना चाहिए कि हम सही मार्ग पर हैं; क्योंकि **शंका-आशंका से आरंभ किया गया अध्ययन लाभकारी नहीं होता।**

जिनवाणी में लिखा है कि आत्मा अनादि-अनन्त है, असंख्यातप्रदेशी है, अनंतगुणवाला है, आनंद का कंद है, ज्ञान का घनपिण्ड है। ऐसा आत्मा तू स्वयं है। इसप्रकार की बातें सुनकर हमें ऐसा भाव आना चाहिए कि अहो ! मुझे तो इस बात की खबर ही नहीं थी, मैं तो अपने को मनुष्य ही मान रहा था, पर इस मनुष्य पर्याय की

१. देव-शास्त्र-गुरु पूजन जयमाला २. मोक्षमार्ग प्रकाशक, पृष्ठ २५७

स्थिति ७०-८० वर्ष की है और मैं अनादि-अनन्त हूँ। अत: मैं मनुष्य नहीं हो सकता; क्योंकि मनुष्य-पर्याय के नाश होने पर भी मैं तो रहूँगा ही।

यदि इसप्रकार के भाव आवें तो समझना चाहिए कि हमारा चिन्तन सही दिशा में है; पर अधिकांश लोगों को तो इसप्रकार के विकल्प उठते हैं कि आत्मा के असंख्यप्रदेश, अनंतगुण किसने देखे हैं। इसीप्रकार यह आत्मा अनादि का है और अनंतकाल तक रहेगा - इसकी क्या गारंटी है। इसप्रकार शंका से आरंभ करनेवालों को स्वाध्याय का असली लाभ प्राप्त नहीं होता।

जरा, सोचो तो सही कि जब डॉक्टर हम से कहता है कि आपके हृदय के बाल्व खराब हो गये हैं, उन्हें बदलना पड़ेगा।

तब हम बिना मीन-मेख किये उसकी बात स्वीकार कर लेते हैं। उसे चीर-फाड़ के लिए वक्षस्थल प्रस्तुत कर देते हैं, लिखकर दे देते हैं कि आप ऑपरेशन करिये, यदि हम मर गये तो आपकी जिम्मेदारी नहीं है।

डॉक्टर पर हम इतना भरोसा करते हैं, तभी शारीरिक दु:ख से मुक्ति मिलती है। मिथ्यादृष्टि एवं रागी-द्वेषी डॉक्टर का इतना भरोसा और वीतरागी ज्ञानी धर्मात्माओं की वाणी का अध्ययन आशंकाओं के बीच रहकर करना चाहते हैं।

इसीलिए तो पण्डितजी कहते हैं कि आत्मा की बात सुनकर ऐसा भाव आना चाहिए कि हमें तो इन बातों की खबर ही न थी। **हम सब जानते हैं, हमें सब पता है - इसप्रकार के अहंकार से भरा चित्त जिनवाणी के श्रवण-पठन का पात्र नहीं है।**

हम क्या करें, हमें तो कोई समझानेवाला ही नहीं है - इसप्रकार के भावों की अपेक्षा ऐसा विचार आना चाहिए कि आज मुझे जिनागम उपलब्ध है, उसे समझानेवाले भी उपलब्ध हैं।

कभी-कभी तो मैं कहता हूँ कि आज का जमाना भगवान महावीर के जमाने से भी अच्छा है। भगवान महावीर की ऑडियो, वीडियो उपलब्ध नहीं है; पर आज हमारे पास आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के आठ हजार घंटों से अधिक के ऑडियो और सैंकड़ों वीडियो उपलब्ध हैं। आज भगवान महावीर के ऑडियो व वीडियो उपलब्ध होते तो उनके अनुयायियों में इतने मतभेद नहीं होते, इतने सम्प्रदाय नहीं होते।

आत्मकल्याण के लिए, आत्मा का अनुभव करने के लिए, जितने ज्ञान की आवश्यकता है; उतना ज्ञान हमें आज उपलब्ध है।

ज्ञान का क्षयोपशम भी है और देशना भी उपलब्ध है। शास्त्र हैं, उनके विशेषज्ञ ज्ञानी प्रवक्ता भी हैं। सभीप्रकार की अनुकूलता है। अत: अब हमें वस्तुस्वरूप को समझने का अपूर्व पुरुषार्थ करना चाहिए।

इसप्रकार अत्यन्त उत्साह से आत्मस्वभाव के निरूपक शास्त्रों का अध्ययन करके और ज्ञानी गुरुओं से मार्गदर्शन प्राप्त करके त्रिकालीध्रुव भगवान के सही स्वरूप को समझना चाहिए।

इसप्रकार विकल्पात्मक ज्ञान में भगवान आत्मा का सही स्वरूप स्पष्ट हो जाने पर, उसके प्रति अपनेपन का भाव आने पर जब अन्तरोन्मुखी पुरुषार्थ होता है; तब निर्विकल्प आत्मानुभूति का मार्ग प्रशस्त होता है।

निर्विकल्प अनुभूति में जाने के पहले भगवान आत्मा का एकदम सही स्वरूप विकल्पात्मक ज्ञान में आना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि उसके बिना निर्विकल्प अनुभूति में प्रवेश संभव नहीं है।

(क्रमश:)

वैराग्य समाचार

श्री टोडरमल दि. जैन सि. महाविद्यालय के स्नातक **जयपुर निवासी पण्डित शिखरचन्दजी शास्त्री बड़ागांव-छतरपुर** का दिनांक 8 सितम्बर को 33 वर्ष की आयु में दुर्घटना में आकस्मिक निधन हो गया। इस अवसर पर श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 9 सितम्बर को प्रात: 9 बजे से श्रद्धांजलि सभा आयोजित की गई। ज्ञातव्य है कि आप टोडरमल महाविद्यालय के 17वें बैच के विद्यार्थी थे। इस प्रसंग पर उनके परिवार द्वारा संस्था को 1100/- रुपये की दान राशि प्राप्त हुई।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अभ्युदय को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है। **ह्न सह-सम्पादक**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

19 से 29 सितम्बर	नागपुर	दशलक्षण महापर्व
1 अक्टूबर	रायपुर	क्षमावाणी
21 से 30 अक्टूबर	जयपुर	शिक्षण शिविर
3 नवम्बर	अलीगढ	दीक्षान्त समारोह
10 से 14 नवम्बर	देवलाली	दीपावली
24 से 29 नवम्बर	सम्मेदशिखर	पंचकल्याणक
25 से 30 दिसम्बर	भीलवाड़ा	पंचकल्याणक

प्रकाशन तिथि : 13 सितम्बर 2012

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा**, डबल एम.ए.(जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैन दर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127